द्वितीय अध्याय

''सूत्रधार' तथा 'महात्मा' की विषयवस्तु : तुलनात्मक मूल्यांकन''

द्वितीयअध्याय

"'सूत्रधार' तथा 'महात्मा' की विषयवस्तु : तुलनात्मक मूल्यांकन"

❑ प्रास्ताविक :

उपन्यास आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण विधा है। उसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता है और उनका उद्घाटन भी। प्रकृति का प्रत्येक रहस्य, मानव जीवन का हर पहलू जब किसी सुयोग्य लेखक की कलम से निकलता है तो वह साहित्य का रत्न बन जाता है, लेकिन इसके साथ ही विषय का महत्त्व और उसकी गहराई भी उपन्यास के सफल होने में बहुत सहायक होती है। संजीव का नया उपन्यास 'सूत्रधार' इसी तरह अपना महत्त्व रखता है। संजीव के 'सूत्रधार' उपन्यास का विषयगत विवेचन यहाँ प्रस्तुत है -

2.1 संजीव के 'सूत्रधार' का विषयगत विवेचन :

रचनाकाल की दृष्टि से संजीव का आठवां उपन्यास 'सूत्रधार' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली से हुआ। 344 पृष्ठों का यह उपन्यास संजीव के शोधपरक कथा-यात्रा में नितांत चुनौतीपूर्ण है। केंद्र में है भौजपुरी गीत-संगीत और लोकनाट्य के अनूठे सूत्रधार भिखारी ठाकुर। एक तरह से यह उनके जीवन की कहानी। वही भिखारी ठाकुर जिन्हें 'महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन' ने 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' कहा था और उनके अभिनंदनकर्ताओं ने 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र'। प्रस्तुत उपन्यास महज लोकमंच के बेजोड़ कलाकार भिखारी ठाकुर के जीवन की कहानी भर नहीं तो संजीव ने इस लोक कलाकार के जीवनाधारित उपन्यास लिखने के बहाने इस क्षेत्र के जातीय संस्कृति, इतिहास और साहित्य को चित्रित किया है। लगभग सदी पूर्व का जीवन, इतिहास, संस्कृति, कला-साहित्य, शोषण, व्यंग्य, शोषण का बोध और निरुपायता अपने अस्तित्व की लड़ाई आदि चीजें यहाँ पर मिलेंगी।

उपन्यास की शुरुआत ही होती है वैशाख की कड़कती दोपहर से, जिसमें दूर तक कोई नहीं। सुनसान राह और ऊपर से आग की तरह बरसने वाली कड़ी धूप और ऐसे में एक गोरा गंठिला जवान इक्के की राह देखता है लेकिन देने के लिए उसके पास रूपये भी नहीं हैं। जवान को मालूम है कि इस ब्रह्मांड़ में इस तरह कड़ी दोपहर में वैशाख के दिनों में न्यौता देनेवाला वो अकेला 'नाई' तो नहीं, उसके जैसे अनगिनत नाइयों को इसी तरह भटकना पड़ रहा होगा। ऐसे में इंगित स्थल पर न्यौता पहुँचाने के बाद भी उसे खाने और पीने के लिए तरसना पड़ रहा था। इसी तरह शुरू से अवहेलित जीवन रहा। बच्चे की जन्म की कहानी माँ बताती है कि, बच्चा पैदा होने के बाद उसके पिता को न्यौता देने का काम इतना था कि सभी के न्यौते देने के बाद जब वक्त मिला तब 'चमइन' को नल काँटने के लिए बुलाया गया। तब नाम पड़ा 'भिखारी' क्योंकि अच्छा नाम तो ऊँचे लोगों के बच्चों को ही जँचते हैं, उनके लिए तो यही ठीक था। इस प्रकार बचपन से अवहेलित 'भिखारी' माँ-पिताजी के छत्रछाया में बड़ा हो गया। नौ वर्ष की आयु में पिता ने उसे पढ़ने के लिए भेजा लेकिन 'काला अक्षर भैस बराबर' भिखारी का दिमाग पढ़ने में नहीं लगा। स्कूल में बच्चों के साथ पंड़ित जी भी जाँति-पाँति का भेद मानते और नाई होने के कारण उससे सेवा ही लेते थे। भिखारी का बचपन दिन में गाय चराने और खेती के छुटपुट कामों में ही बीत जाता। एकौना में यज्ञ के समय दलसिंगार ठाकुर (भिखारी के पिता) अपने पुत्र और दूसरे नाइयों के साथ वहाँ मौजूद पंडितों की सेवा टहल में लगे रहते थे। भिखारी के गौरवर्ण और सुंदर व्यक्तित्व को देखकर किसी पुरोहित ने उसे 'ब्राह्मण' समझकर उसे यज्ञशाला को रंगीन अक्षत से चौक पूरने का काम सौंप दिया लेकिन भिखारी नाई है यह जानकर वह गुस्से से पागल हो गया और घृणाभरी तीखों आवाज में कहा, ''जावो बच्चा दूसरा काम देखो। एक बात सुन लो जात मत छिपाना, पाप लगेगा।''[1] वही दूसरी तरफ वही ब्राह्मण प्रवचन देते हैं - ''जात-पात पूछें ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।''[2] यही थी समाज की स्थिति।

भिखारी को दलसिंगार ठाकुर ने नाई का पूरा प्रशिक्षण दे दिया। बाबू हरिनंदन सिंह ने एक बार उसके मन में पढ़ाई की आकांक्षा जगाई थी। भगवान साहु के पास

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 22
2. वही

जाकर उसने पढ़ाने की बिनती की और एक-एक शब्द जोड़कर भिखारी पढ़ने लगे। बचपन के शादी की पहली पत्नी मरने के बार भिखारी का दूसरा विवाह कर दिया। बच्चे के जन्म के बाद पत्नी की मौत और फिर दूसरे दिन बच्चे की भी मौत का आघात भिखारी को सहना पड़ा। घरवालों की आकांक्षा के कारण फिर से भिखारी का घर बस गया और वही मनतुरवादेवी भिखारी के जीवन की अखंड जीवनसंगिनी बन गयी। बाढ़ के कारण कुछ दिन भिखारी फतनपुर रह गए। लेकिन बाद में फिर से वापस गांव ही आए। लेकिन सालभर काम करने के बाद भी रूपये देने से लोग मुँह फेर लेते। इसलिए भिखारी खड्गपुर आ गए। वहीं पर 'रामलीला' तथा 'जत्रा' भिखारी ने देखा। वापस गाँव जाते समय कलकत्ते में दूर के रिश्तेदार बाबुलाल ठाकुर से मिलकर आए।

कुतुबपुर में भिखारी रामानंदसिंह के साथ 'रामलीला' खेलते हैं। रामलीला के संपन्न होने के बाद फिर से उन्हें पूर्वपरंपरा का काम 'नाई का व्यवसाय' ही करना पड़ा। भिखारी का मन देर तक विचार करता रहता और ऐसे में ही उन्हें नाच सूझा। भिखारी फिर खुद लिखते रहते और एक से एक रचनाएँ निर्माण होती गई। रामसेवक ठाकुर से उन्हें मात्रा, छंद, ऱ्हस्व-दीर्घ की जानकारी प्राप्त हुई थी। जहाँ मनतुरवादेवी ने पुत्र केदारनाथ को जन्म दिया वही भिखारी ने अपनी रचना 'बिरहा बहार' का निर्माण किया। लेकिन केदारनाथ नहीं बचा। भिखारी अपनी रचनाओं में खोते गए। रामानंद सिंह ने उन्हें किसी नाच गिरोह में शामिल होने की सलाह दी। स्वाभिमानी भिखारी ठाकुर अंगरहित यादव की गिरोह में बहुत देर तक नहीं टिक सकें। वहाँ के नाच की अश्लीलता में उनका दम घुटने लगा और इन सबसे बाहर आकर भिखारी ने अपना खुद का गिरोह स्थापित किया। भिखारी अपनी रचनाओं में रस-रंग के साथ संस्कृति-परंपरा भी बनाए रखने का प्रयास करते थे। लेकिन यह सबकुछ करते हुए घर-परिवार का कड़ा विरोध उन्हें सहन करना पड़ा। एक लड़ाई घर में थी, खुद से और परिजनों से और दूसरी लड़ाई बृहत्तर देश-जहान से।

दल का पहला प्रदर्शन मुजफ्फरपुर के सर्वमस्तपुर में तय हो गया था और पहली कमाई पचास रूपये दल को मिली। नाटक में जो न्यूनता आयी उसे दूर करने की

कोशिश की गई। बाबुलाल ने जाना कि भिखारी पर सबसे अधिक प्रभाव 'रामायण' का है। इसलिए बाबुलाल उन्हें 'प्यारी-सुन्दरी वियोग' पढ़ने के लिए देते हैं। जिसे पढ़कर भिखारी व्याकुल हो उठते हैं। भिखारी मीरगंज जाकर आते हैं और पूरे बदले भिखारी 'बिरहा बहार' लिखते हैं जिसमें पति अपनी पत्नी को गाँव छोड़कर परदेस धन कमाने जाता है। वहीं पर किसी वेश्या के चुंगल में फँस जाता है। वियोग वर्णन, रसरंग के साथ आखिर में बिछडे हुए फिर मिल जाते हैं। जिसे पढ़कर बाबुलाल कहते हैं - ''काश तुमने यह 'बिरहा बहार' दस-बीस साल पहले लिखा होता तो कम-से-कम मेरी जिंदगी तो कलकत्ते में सड़कर गारत न हुई रहती।''[1]

एक तरफ भिखारी ठाकुर को जहाँ अपने दल को लोकप्रिय ही नहीं बल्कि नौटंकी की अश्लीलता हटाकर परिष्कृत करने का संघर्ष था - तमाम प्रचलित स्वीकृत अश्लीलताओं और विकृतियों के बीच। फिर अपनी मंडली से नचनियों, गवैयों को जोड़े रखने का संघर्ष भी था जहाँ बात-बात पर ऊँच-नीच और जातिगत स्वाभिमान की लड़ाई भी थी। यह सब कुछ संघर्ष उन्होंने सहन किया। दल के लड़कों को अभिनय सीखाते थे। परकाया प्रवेश को ही तो पुरी तरह साधा था भिखारी ठाकुर ने। उनके लिए कोई बंधन नहीं था, कोई सीमा नहीं थी। यहाँ तक की स्त्री-पुरूष का भी भेद नहीं था। वह जब मेहरारू का पाट करते तो सर्वांग में बदल जाते। अभिनय का चमत्कार - पूर्ण कायांतरण।

अपने अंदर के 'सूत्रधार' को स्वतंत्र जगह की जरूरत है यह भिखारी जानते थे। गाँव के लोग उनके इस कला को नहीं जानते। वे सिर्फ जानते है तो भिखारी एक नाई है और वही नाई जो उनके बदबू भरे घने बालों को दूर करेगा। भिखारी जानते है यह घुटन, अंदर भी है और बाहर भी। इस घुटन में उनका 'सूत्रधार' कभी उभर नहीं पायेगा। कुतुबपुर से भिखारी चन्ननपुर आकर अपनी साधना में जुट गये थे।

गाँव की बबुनी का अनमेल विवाह भिखारी ने देखा धा। इसी प्रकार बड़े पैमाने पर यु.पी., बिहार में बेटियाँ बेची जातीं। इस सूत्र को पकड़कर भिखारी ने 'बेटी वियोग' की रचना की। जिसके प्रदर्शन में कई विरोध हुआ और कई पर यह सफल भी

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 81

रहा। तफजुल ने हँस कर कहा - ''बाबुलाल की यह बात सच नहीं है कि समझे देशवा तो रजपुरा नहीं हो गया। ... हकीकत में तो यह है कि समसे देशवा रजपुरा हो गया है।''[1] हर गाँव कोई न कोई बेटी बेची जाती थी। बस उसका नाम, रंग, रूप, जाँत अलग थी लेकिन बात वही थी। 'बेटी वियोग' से क्रांति की आग फैल गई। बेटियाँ ऐसे विवाह से इन्कार कर भर मंडप से भाग जाती या फिर आत्महत्या कर लेती। लिखने की प्रेरणा भिखारी समाज से ही ले लेतें। उनका मन किसी अनजानी-सी बंदिश में जुड़ता था। महात्मा जी जब देश के बड़े नेता, संतों के बारे में विषय बनाने की बात कहते हैं तो भिखारी उनसे कहते हैं - ''देश दुनिया के बारे में बड़का-बड़का नेता गान्ही बाबा, जयपरकाशजी, राजेन्दर बाबू सोचेंगे, मुझे तो दुःखों से छलनी हो आए, मुँह दूबर लोगों के बारे में सोचने दो, जिन्हें मैं जनम से देखता रहा हूँ, चीन्हता रहा हूँ...। हम बहुत कमजोर आदमी हैं बहुत-ही कमजोर।''[2] आगे 'गंगास्नान', 'गबर घिचोर' जैसे सफल नाटकों का निर्माण भिखारी ठाकुर ने किया। भिखारी के मंडली का प्रदर्शन सफल पर सफल होता रहा। लोगों की नजर लेकिन नाचनेवाले लड़कों के प्रति घृणाभरी ही थी। हीनता की दृष्टि से ही यह लोग उन लड़कों को देखते थे।

मंड़ली को नई रचना की जरूरत थी। तभी भिखारी ने 'गंगास्नान' निर्माण किया। उसके बाद 'गबर घिचोर' की रचना की जिसमें बच्चे पर असली हक उसकी माँ का ही होता है, यह बात स्पष्ट की - ''सिर्फ बीज देने भर से या उस खानदान में जनम लेने मात्र से गबर घिचोर के हकदार वे कैसे हो जाएँगे, असल हक तो माँ का है, सिर्फ और सिर्फ माँ का।''[3] इस प्रकार गंगास्नान और 'गबर घिचोर' दोनों सफल सामाजिक नाटकों की रचना भिखारी ने की।

15 जनवरी 1934 का भुकंप आया और साथ में सब कुछ उजाड़ कर चला गया। इस भुकंप के भयंकर विनाश को देखकर भिखारी दीन-दुःखियों की सेवा के लिए निकल पड़े गाँव-गाँव। भुकंप के पीछे महंगाई भी आयी। समाज को इस तरह आघातों पर आघात सहन करने पड़े।

---

1. संजीव - सूत्रधार, पृष्ठ - 124
2. वही, पृष्ठ - 140
3. वही, पृष्ठ - 149

अपने हृदय की कसक, तड़प को भिखारी ने 'नाई बहार' में प्रस्तुत किया। बच्चे के जन्म से लेकर उसके नहलाने, धुलवाने, नह काटने तक के सारे काम नाई-नाइन को करने पड़ते और इसके लिए लड़की हुई तो दो आने और लड़का हुआ तो चार आने मिलते। वही दूसरी ओर सिर्फ बच्चे की जन्मकुंडली देखनेवाले पंडित को बाईस रूपये मिलते। यही सामाजिक अव्यवस्था 'नाई बहार' में भिखारी ने प्रस्तुत की। 'नाई बहार' या 'पिया निसइल' जैसे नाटक भिखारी ने सामाजिक क्रांति के उद्देश्य से लिखे। जिसमें समाज का विकास, परिवर्तन की दिशा देने का संदेश ही था।

बढ़ती महँगाई के कारण दूर-दूर तक तमाशा की बात भिखारी सोचते हैं। कलकत्ते में भिखारी का कार्यक्रम खूब छा गया। यश-कीर्ति दोनों मिलती गई। मान-सम्मान की भूख तृप्त हो गई। जब दल से लालू और सोमारू अलग हो गए तब भिखारी ने उस पर उपाय किया। सोलह आने की कमाई में दस आना दल के छः मालिक के। इस छः आने में दो आने साज-समान पर दो आने व्यवस्था प्रबंध पर और शेष दो मालिक के अपने। भिखारी के दल की उन्नति हो गई। आठ बिस्सा खेत, बैल, भैंस आदि की खरीदारी उन्होंने की। इसके साथ जरूरतमंद लोग आए दिन द्वार पर आ जाते। शादी-ब्याह, खुशी-गम, मुकदमा, रिन आदि के लिए मदद माँगते और भिखारी उनकी मदद करते।

मिर्चइया बाबा ने भिखारी को 'महात्मा' की उपाधि दी। भिखारी पर पहला आघात हुआ शिवकलीदेवी की मौत और दूसरा रामानंद सिंह की। दोनों के चले जाने से भारी सदमा उन्हें पहुँचा।

भिखारी मानते हैं कि, जिस 'बेटी वियोग' के प्रदर्शन में सबसे अहं भूमिका स्त्रियों की है। यह प्रसंग जिन स्त्रियों पर गुजरता है अगर वे ही इसे न देखें तो इसका क्या उपयोग? 'बेटी वियोग' के प्रदर्शन से भिखारी का परिवर्तनोन्मुख विचार सामने आता है। भिखारी की लोकप्रियता देखकर 'वॉरफंड' के लिए अंग्रेज सरकार उसके प्रदर्शन को रखते हैं और सिर्फ दो सौ रूपये देते हैं। कुल्हडिया इस्टेट में भी भिखारी अपने नाच का प्रदर्शन

करते हैं। वहाँ के राजा का प्रजा पर जुल्म देखकर भिखारी प्रदर्शन में इसका पर्दाफाश करते हैं। वे कहते हैं - ''जियादा गड़बड़ी करें तो कुल्हड़िया महाराजा के हियाँ नौकर रखवा दो, दू दिन दाना-पानी बन्द रही तो आकिल दुरुस्त हो जाई।''[1] इस प्रकार भिखारी समाज की संवेदना को जानते थे और उसके विरोध में अपनी आवाज उठाते थे। 1933 में भीषण बाढ़ के कारण गाँव के गाँव साफ हो गए। कुतुबपुर छोडकर भिखारी का परिवार नाँव पर चढ़कर चला गया। जहाँ पानी में रामप्यारी कुतिया को देखकर भिखारी सोचते हैं - ''लोगों को कैसे समझाते कि वह महज एक कुतिया नहीं है, उन जैसे पीछे धकेले जाते बेकसों की संपूर्ण पीड़ा और जिन्दा फरियाद है वह।''[2] सच में यही समाज का नजरिया निम्न जाति की तरफ देखने का था। जिसे देखकर भिखारी तिलमिला उठते थे।

रामध्यानसिंह ने भिखारी को 'वॉरफंड' के लिए प्रदर्शन का न्यौता दिया धा। आर्थिक मुनाफा न होने के कारण भिखारी प्रदर्शन के लिए उदासीन थे। रामध्यानसिंह ने उन्हें 'रायबहाद्दूर' की उपाधि कलक्टर से प्राप्त कर देने का वादा किया। इसमें खुद सिंह का भी नीजि स्वार्थ था। बेटे को मिले इस उपाधि से दलसिंगार ठाकुर फुले न समाएं। यह खुशी ज्यादा दिन नहीं देख पाए और उनकी मौत हो गई। दलसिंगार ठाकुर का विरोध ही भिखारी की शक्ति थी। वही प्रेरणा भी थी जिससे उन्होंने इतनी राह तय की थी। जब यह विरोध ही समाप्त हो गया तो भिखारी पर पहाड़ टूट पड़ा।

'नाच' में भिखारी हमेशा अपनी संस्कृति की मर्यादा बनाने की कोशिश करते। नाच में विदुषक का काम लोगों को हँसाना है और इसके लिए समाज की गंदगी, धर्म के नाम पर होनेवाला अधर्म, बड़े लोगों के छोटे काम ऐसा कोई भी विषय हो सकता है, जहाँ समाज की आँख खुल जाए, समाज परिवर्तन हो।

आरा, सारन, बलिया, मुंगेर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर-पटना, कोइलौरी आदि जगह गिरोह का प्रदर्शन सफल होने के बाद आगे बनारस, कलकत्ता, गोरखपुर की यात्रा थी लेकिन इसमें एक के बाद एक आफत आन पड़ी। जैसे छबीला की मौत, दीघा घाट के स्टेशन पर जाली नोटों का झंझट आदि।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 208
2. वही, पृष्ठ - 215

पत्नी मनतुरवादेवी की मौत के समय भिखारी नहीं जा पाते क्योंकि सबकी इज्जत सट्टों में लग गई थी। हैजे के कारण मनतुरवा देवी की मौत होने के बाद, पीडा से व्याकुल हो उठते हैं भिखारी। गाँव के एक ही कुएँ से सभी पानी भरते थे जो पंडित जी का कुँआ था, जहाँ भारी वर्णभेद था। उच्च जाति को सबसे पहले और अंत में निम्न जाति को पानी मिल पाता। दल के प्रदर्शन के वाद भिखारी ने खुद का कुँआ खुदवाया और सभी के लिए यह खुला रखा जिससे आगे किसी जरूरतमंद की मौत पानी से न हो पाए।

आसाम का दौरा कामयाब रहा लेकिन वहाँ के सिनेमा हॉल बंद होने को आए इसलिए कलक्टर साहब ने वहाँ से जाने के लिए कहा, नहीं तो खून-खराबे की संभावना जतायी। भिखारी को दल को लेकर वापस अपने प्रदेश लौट आना पड़ा।

भिखारी के सदस्य ग्रामोफोन तथा आधुनिक साधनों पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं। लच्छन के आने से बाबुराव दल से हट गए थे। कुछ दिनों बाद बाबुलाल की भी मृत्यु हो जाती है।

पराधीन भारत में स्वनामधन्य लोगों ने अंग्रेजों की अभ्यर्थना की। मान-अभिमान छोड़कर उनकी राहों में कालीन की तरह बिछे लेकिन दोषमुक्त और मजे में रहे - समर्थ जो थे लेकिन असमर्थ भिखारी के साथ ऐसा नहीं हुआ। युद्ध के दिनों में भिखारी ठाकुर ने भी अपने नाच से वॉरफंड के लिए पैसा जमा किया था। तब उनकी बहुत थू-थू हुई। (इस प्रसंग में संजीव ने सन् 1912-13 के मर्यादा पत्रिका के संयुक्तांक की चर्चा की है जो जॉर्ज पंचम के भारत आगमन पर प्रकाशित हुआ था।) जहाँ पंडित चंद्रधर धर्मा, गुलेरी, प्रेमधन, अयोध्यासिंह उपाध्याय, बालकृष्ण भट्ट आदि ने अंग्रेजी राज के यश के गीत गाये थे, स्वागत में बिछे शब्द गिराए थे। "लोगों की याददाश्त कितनी कमजोर होती है। उन्हें कोई कुछ नहीं कह रहा है, सारा दोष-पाप भिखारी पर। भिखारी नाचे तो जरूर वॉरफंड के लिये, मगर किसी भी नाच में उन्होंने इन बड़े लोगों की तरह अंग्रेजों की स्तुति नहीं की। इन विद्वानों को यह क्यों नहीं सूझता?"[1]

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 270

भिखारी ठाकुर ने अपने बलबुते पर सिद्धि अर्जित की थी लेकिन उनके साहित्य की चोरी हो गई। उनके नाटक 'बिदेसिया', 'बेटी वियोग' आदि की नकल पर बाजार में पुस्तकें बेची गई। इसी तपन से आगे उन्होंने 'कलजुग प्रेम' की अगली पंक्तियाँ उतार दी जिसमें ऊँच-नीच की व्यंजनाएँ उठाते-उठाते मन का पूरा ताप उतार दिया था। सीवान के भोजपुरी संमेलन में महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन ने भिखारी ठाकुर को 'भोजपुरी शेक्सपीयर' की उपाधि से नवाजा। बिहार सांस्कृतिक समारोह तृतीय के आयोजन में 26 जनवरी, 1954 में पटना के हर्निंग पार्क में हुए आयोजन में भिखारी ठाकुर के दल ने पूरी भीड़ का मन मोह लिया।

प्रसिद्धि की सीढ़ियाँ चढ़ते समय भी जातिगत दुर्भाग्य उन्हें सुंघते आता ही। पहले भिखारी नाई थे इसलिए घृणा थी लेकिन आज भिखारी नाई हैं तो ईर्ष्या है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं - ईर्ष्या और घृणा। इसी से 'चौबरन पदवी' में पूरे समाज का चित्रण उन्होंने किया - ''प्रथम शूद्र द्वितीय वैश्य, तृतीय क्षत्रीय हाथ, चौथे ब्राह्मण बकत मुख, सदा रहत एक साथ।''[1] लिखने के बाद गीत पूरे समाज का हो जाता है, यह भिखारी मानते थे। जैन सिद्धांत भवन में बद्री सिंह बागि ने भिखारी को चुनौती देते हुए समस्यापूर्ति दी - ''केही कारण नाम भिखारी परी...?''[2]

अगले कवि सम्मेलन में उसका उत्तर भिखारी का था -

''नित ही नित भंग धतूर चबावत, अंग समूचा में खाक भरी
डमरू तिरसूल लिए कर में, कौशल्या कहं जाइके अल्ख करी,
दीन दयाल सदा जनपालक, आप उदासी के रूप धरी
भेष भिखारी बना शिव का, तेंहि कारन नाम भिखारी परी।''[3]

इस प्रकार चौतरफा हुए आक्रमणों को परास्त कर दिया। बेटी सोनिया की मृत्यु हो गई। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, भोजपुरी परिषद में भिखारी को निमंत्रण था। जहाँ गणेश चौबे उन पर आरोप लगाते हैं कि उनका काव्य मौलिक नहीं। भिखारी सोचते हैं, यह सब नाई होने

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ -
2. वही, पृष्ठ - 299
3. वही

से हैं, अगर ब्राह्मण होते तो यह आरोप उन पर न लगता। एक अनपढ़ भिखारी को 'बीसलदेव रासो' या फिर 'ब्रेख्त का काकेशियन सर्किल' क्या मालूम है? क्या उन्होंने पढ़ा है कोई पद? फिर भी लोग उन पर नकल का इल्जाम लगाते हैं। भिखारी के बिदेसिया की नकल पर सिनेमा बनाया गया। इन लूटेरों ने पूरा लूट लिया था भिखारी को, जब कोरे चेक पर उनके दस्तखत लिख लिए थे वह तारीख थी 13-6-1963।

विद्यापति भवन पटना में भारतीय नृत्यकला मंदिर में राज्यपाल अनंत शयनम् अय्यंगार के हाथों नौ कलाकारों का सम्मान हुआ। उसमें सबसे लोकप्रिय थे भिखारी ठाकुर। 'बिहार भूषण' की उपाधि से भिखारी नतमस्तक हो गए थे। आगे, कलकत्ते के 'सत्यनारायण भवन' में भी सम्मान किया गया।

भिखारी बूढ़े हो चुके थे। गिरोह का मालिक अब गौरीशंकर था। लच्छनराय ने दल छोड़ दिया। कोरलौरी के जलसे में भिखारी के गिरोह का प्रदर्शन था। लीडरों की सूदखोरी को विषय बनाकर बेटी वियोग का प्रसंग बनाया। जिसमें बात थी - ''कइसन करेला होला ऊ बाप के जे बेटी बेचेला..? हियाँ कुमरडूबी के बजरिया में बहुत जडी-बूटी बिकाला, एक, गो दवाई, एक गो टोटका हम भी बताते हैं। किसी गाइ-गोल को कीड़ा पड़ा हो तो पाँच सूदखोरन, चाहे पाँच बेटी बेचवन के नाम पीपर के पात पर लिख के खिला दीजिए, चाहें गला में कपड़ा से बाँध दीजिए, कीड़ा साफ हो जाएगा।''[1] इस कथन से जमाव में दंगा हो गया। ऐसे में सिंह जी और शर्मा जी माइक पर घोषणा करते हैं कि यह भिखारी ठाकुर का अंतिम प्रदर्शन है और वे नाच से संन्यास लेंगे। भीड़ चुप हुई और परिणाम यह हुआ कि सारे लोगों ने कसम खा ली कि आज से कोई अपनी बेटी नहीं बेचेगा।

भिखारी उम्र के अस्सी साल पार चुके थे। गौरीशंकर शराब पीने लगा था, जिस दारु और ताडी के विरोध में भिखारी ने पिया निसइल लिखा था ऐसे में घर में यह भतीजा निसइल निकला, देखकर भिखारी को सब कुछ छूटता नजर आया। भिखारी से बढ़कर भिखारी का नाम था। लोगों को आकाशवाणी के सूचना एवं जनसंपर्क विभाग को परिवार नियोजन के प्रचार के लिए भिखारी चाहिए थे।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 329

स्मृति के बवंडर में एक-एक याद उनके आँखों के सामने गुजरनी लगी। बाढ़वाली कुतिया याद आती जिसे पीछे से लड़के ढेले से मारते। यह कुतिया याने स्वयं भिखारी थे और पीछे से पत्थर मारने वाले लड़के याने यह समाज। जो हमेशा से नोंचता रहा उन्हें क्योंकि वे एक नाई थे। समाज के उच्च वर्ग से हमेशा घृणाभरी निंदा ही आई हिस्से में, लेकिन भिखारी थे एक जननायक, जन की माया, हमेशा रही उनके साथ। 10 जुलाई 1971 शनिवार के अपहरन् दो बजे उम्र के 84 साल में भिखारी ठाकुर का दिया बूझ गया। इतना रस था उनमें कि आग की कमी से देह जल्दी न जली। यह ललक थी भिखारी की 'व्यास' बनने की एक 'प्यास' और यही रस भोजपुर के इस मिट्टी में बरसों इसी तरह घुलता रहा है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि संजीव ने निम्नजाति में जन्मे भिखारी ठाकुर, एक ऐसे व्यक्ति के जीवन को उकेरा है जो कई तरह के सामाजिक और पारिवारिक बंधनों के बावजूद उस चौहद्दी से बाहर निकलना चाहता था, जिसे समाज ने उस पर आरोपित कर दिया था। भिखारी की शोहरत बनारस से कोलकत्ता और वहाँ से रंगून तक गई लेकिन हिंदू जाति व्यवस्था के तहत ऊँची जातियों में उन्हें आखिर तक यह अहसास कराया कि वे जाति के नाई ही हैं। सामाजिक प्रताड़ना, घर-परिवार का विरोध, उच्च वर्ग की घृणा आदि के साथ कड़ा संघर्ष करते-करते सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा रखनेवाले भिखारी की यह चरित कहानी यहाँ अत्यंत सफलतापूर्वक प्रस्तुत हुई है। अत: कहना सही होगा कि संजीव का 'सूत्रधार' एक सफल तथा श्रेष्ठ उपन्यास है।

2.2 'महात्मा' विषयगत विवेचन :

डॉ. रवींद्र ठाकुर द्वारा लिखित 'महात्मा' (अक्तूबर 1999) महात्मा जोतिराव फुले के समग्र विचारों, सर्वस्पर्शी व्यक्तित्व और कुल मिलाकर उनके जीवनकार्य को ही प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का प्रकाशन मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे से हुआ। 456 पृष्ठों का यह उपन्यास 19वीं सदी के इतिहास में सामाजिक प्रबोधन करनेवाले फुले के जीवनचरित्र के हर पहलू को प्रस्तुत करने में डॉ. रवींद्र ठाकुर को मिली सफलता को

प्रस्तुत करता है। प्रा.डॉ. जी.पी. माळी इसके विषय में कहते हैं - ''फुल्यांचे जीवनचरित्र ललितरूपाने वाचकांसमोर मांडण्याचा विचार डॉ. रवींद्र ठाकुर या तरूण व उमद्या लेखकाच्या मनात आला आणि ते झपाटल्यासारखे कामाला लागले. वाचन, लेखन आणि संशोधनासाठी सर्वस्व पणाला लावून आपल्या मनातील जिद्द सिद्ध करण्याची वृत्ती असलेल्या लेखकाच्या हातात 'फुले' सापडताच त्यातून विचारांच्या सुगंधाची आकर्षक, असामान्य व अविस्मरणीय माळ गुंफली गेली.''[1] (फुले जी का जीवन चरित्र ललित रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का विचार डॉ. रवींद्र ठाकुर इस प्रतिभा सम्पन्न लेखक के मन में आ गया और वे बहुत तेजी से इस काम में लग गए। पढ़ाई, लेखन और संशोधन इस सब में खुद को झोंक कर अपने मन के इस प्रभावी विचारों को प्रकट करने वाले इस लेखक के हाथ में 'फुले' मिल गए और उनके विचारों से सुवासिक, आकर्षक, असामान्य, अविस्मरणीय माला तैयार हो गयी।) कहना सही होगा कि प्रस्तुत उपन्यास महात्मा जोतिराव फुले के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं चरित्र पर प्रकाश डालता है।

उपन्यास की शुरुआत होती है स्कूल छूटने की घंटी से, जहाँ 'जोति' (जोतिराव) क्लास से बाहर आता है तो थॉमस पेन के विचारों के साथ ही। मानव की प्रतिष्ठा, व्यक्तिस्वतंत्रता का पुरस्कार और गुलामी का सर्वथा विरोध इस पेन के विचारों से जोति पूरी तरह से प्रभावित था। 'द वर्ल्ड इज माय कंट्री, माय रिलिजन इज टू डू गुड, माय ओन माईंड इज माय ओन चर्च' जैसे वाक्य उसे विचार के लिए प्रेरित करते थे।

पेन के विचारों से भारतीयों की तुलना कर देने पर जोति को भारतीयों की दयनीयता और भयानक स्थिति का अंदाजा आ जाता। समाज में पहले सामाजिक क्रांति महत्त्वपूर्ण थी और बाद में राजनैतिक क्रांति।

अज्ञानी समाज को किसी भ्रामक विचारों में फँसाकर उनके बलबूते पर अपनी रोटी सेंकनेवाले भट विद्वानों के खिलाफ जोति को आवाज उठानी थी। उन्होंने पेन के विचारों की पढ़ाई शुरू की। दुनिया के हर मानव का धर्म एक ही है और वह 'मानवता' धर्म ही है और इसके स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को भी नहीं। इस पेन के विचारों को लेकर जोति अपने साथियों से बातचीत करता है।

---

1. प्रा.डॉ. जी.पी. माळी : दै. पुढारी - बहार, रविवार, 31 अक्तूबर, 1999, पृष्ठ - 5

मित्र के भाई के शादी के अवसर पर जोति का ब्राह्मण लोग अपमान कर देते हैं - ''ए शूद्रा, कुणबटा! वरातीत ब्रह्मवृंदासह चालण्याचे तुला धाडस तरी कसे झाले? तू स्वत:ला ब्राह्मणांच्या बरोबरीचा समजतोस की काय? जातपात रीतिरिवाज यांचा तुला काही विधिनिषेध? चल हो बाजूला!''[1] (ये शूद्र, कुणबट! बारात में ब्रह्मवृंदों के साथ चलने की तुम्हारी हिंमत कैसे हुई? तुम खुद को ब्राह्मणों के बराबर समझते हो क्या? जाति-पाँति, रीतिरिवाजों की तुम्हें कोई फिक्र नहीं? चलो दूर हो जाओ यहाँ से।) इस अपमान से तिलमिला उठते हैं। घर में पिता के समझाने पर भी जोति गुस्से से पागल हो जाते हैं, अग्नी की तरह उनके मुँह से शब्द गिरते हैं - ''वरातीच्या घोड्याचा, एका पशूचा त्यांना विटाळ होत नाही, माणसांचा मात्र विटाळ होतो. हा त्यांचा धर्म?... हा त्यांचा आचार...?''[2] (बारात के घोडे से, एक पशू से अपवित्रता नहीं होती लेकिन मनुष्य से होती है। यही उनका धर्म?... यही उनका आचार...?) यही परिवर्तन हो जाता है जोति में। पिता जब पेशवों के अत्याचारों का वर्णन करते हैं तो और भी जोति क्रोधित हो उठते हैं। जोति सही सलामत घर आया यही देखकर गोविंदराव को राहत मिली। आर्यभट्टों के भ्रामक विचारों से उसे क्रोध आता है। लोगों के अज्ञान का फायदा उठाकर ब्राह्मण लोग उन्हें जाति के बंधनों में फँसाकर अपना वर्चस्व स्थापित कर देते हैं। शताब्दियों से संकुचित यह जातियाँ उच्च वर्ग का अत्याचार सहन कर रही थीं। इनकी इस दुर्दशा को रोकने का एक ही उपाय था और वह था, उन्हें अज्ञान के अंध:कार से निकालकर शिक्षित करना। सभी प्रश्नों के मूल में था अज्ञान और अविद्या और इसका जवाब था 'शिक्षा'। शादी में हुए अपमान से जोति के विशाल कर्तृत्व के लिए समाजोन्मुख, समाजपरिवर्तनशील ध्येय प्राप्त हुआ। पढ़ना, चिंतन करना इसमें जोति ने खुद को झोंक दिया। गौतम बुद्ध, महात्मा बसवेश्वर, तीर्थंकर आदि के विचारों की पढ़ाई की। मानव के कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पण करनेवाले 'येशू' का चरित्र जोति के मन में हमेशा से श्रद्धा का स्थान बनाए हुए था।

शिक्षा का महत्त्व जानकर जोति ने अपने घर से ही इसकी शुरुआत की। सबसे पहले अपनी पत्नी सावित्री को पढ़ाना आरंभ किया। मनुष्य को अगर उसके मनुष्यपन का अहसास कराना है तो ब्राह्मण लोगों के वर्चस्व के नीचे दबी स्त्री को सबसे पहले

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 18
2. वही, पृष्ठ - 20

शिक्षित करना आवश्यक है, यह बात उन्हें महत्त्वपूर्ण लगी। अविद्या यही सभी अनर्थ बातों का मूल है यह बात उन्हें अच्छी तरह से मालूम थी। इसलिए वे कहते हैं - "विद्येविना मती गेली । मतीविना नीति गेली।"[1] इसलिए स्त्री शिक्षा का क्रांतिकार्य उन्होंने हाथ में लिया। इस कार्य में उनके दोस्त मोहन, सखाराम, सदाशिव आदि ने उन्हें मदद की। जोतिराव फुले ने सन् 1848 में भिडे की हवेली में पहला लड़कियों का स्कूल खुलवाया। छ: लड़कियाँ पहले यहाँ आयीं। यह करते समय समाज में इसके विरोध में बहुत चर्चाएँ सुननी पड़ी। लोगों की मानसिकता बदलने की बात जोतिराव करते तभी घर से उनके पिता का ही कड़ा विरोध उन्हें सहन करना पड़ा। कभी गोबर-कीचड़ तो कभी पत्थरों का सामना तक करना पड़ा। लेकिन अपना कार्य वे करते रहें। जिसका फल आज हमें मिल रहा है और स्त्री आज शिक्षित ही नहीं तो हर क्षेत्र में अग्रस्थान पर कार्यरत है । घर के विरोध के कारण जोतिराव को घर छोड़ना पड़ा। तब जनाब चाचा के घर उन्हें आसरा मिला। सावित्री का पढ़ना और स्कुल चलाना तत्कालीन समाज में धर्मद्रोह, समाजद्रोह था। समाज की दृष्टि से यह अपवित्र, अपमानित, अमंगल ऐसी घटना घट चुकी थी। एक तरफ समाज के विरोध में जोतिराव ने स्कूलों की संख्या बढ़ायी। अपने विचार अधिक प्रखरता से व्यक्त करनेवाले 'मुक्ता' जैसे छात्र इस स्कूल में निर्माण हो रहे थे। बच्चों को सिर्फ किताबी कीड़ा बनाने से नहीं तो उन्हें विवेक युक्त मनुष्य बनवाने की शिक्षा देनी थी।

जोतिराव के इस शिक्षा कार्य का सभी ओर बोलबाला हो गया। सन् 16 नवंबर 1852 में मेजर कँडी के हाथों और थॉमस कँडी, थॉमस आर्न्केन, पेरी कर्नल टेलर आदि अधिकारियों के उपस्थिति में जोतिराव का सम्मान किया गया। बोर्ड ऑफ एज्युकेशन के अध्यक्ष जॉन वॉर्डन ने इस अवसर पर स्कूल देखकर मदद करने का आवाहन किया और स्कूल की बिल्डिंग के लिए जगह देने का वादा भी।

प्राथमिक शिक्षा से अधिक उच्च शिक्षा पर अधिक खर्च होता था। उच्च शिक्षा से सिर्फ समाज का उच्च वर्ग ही लाभान्वित हो रहा था। आम सामान्य जनता कि यह बात पहुँच से परे थी। किसान, मजदुर आदि लोगों को इस शिक्षा से दूर रखा जा रहा

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 330

वह भी प्रयत्नपूर्वक। उनके मन में शिक्षा के प्रति लगाव पैदा करने के लिए शिष्यवृत्ति का आयोजन कर उन्हें शिक्षा की ओर आकृष्ट कर दिया। अपने आवेदन में शिक्षकों के प्रशिक्षण से लेकर उनकी तनख्वाह, स्कूल जाँच, पाठ्यपुस्तक - विषयों का चुनाव आदि बातें उन्होंने रखी थी। अपना यह आवेदन जोतिराव ने अंग्रेज सरकार के सामने रख दिए थे।

आधुनिक मराठी नाटकों में सबसे आधुनिक नाटक कहकर जिसका उल्लेख होता है वह जोतिराव का 'तृतीय रत्न' है। इसमें शिक्षा के मत, ब्राह्मण लोगों की स्वार्थी वृत्ति आदि का पर्दाफाश करने का प्रयास किया था। समुद्रमंथन में चौदह रत्न प्राप्त हुए, उसमें तीसरा रत्न याने 'लक्ष्मी जी'। लक्ष्मी याने वैभव, संपन्नता, प्रतिष्ठा और यह सब ज्ञान के सिवाय प्राप्त नहीं होता। इसी से अविद्या का नाश संभव है। इस लिए सावित्री ने सुझाया नाम 'तृतीय रत्न' ही जोतीराव को पसंद आया। वे कहते हैं - ''खरंच फार चांगलं नाव सुचवलंत...''[1] (सच में बहुत अच्छा नाम आप ने सुझाया...) इस तरह कोंडिबा पाटिल के आग्रह और ब्राह्मणों के स्वार्थीवृत्ति के भक्ष्य बने लोगों को जागृत करने के लिए शिक्षा का महत्त्व बता देनेवाला यह नाटक जोतिराव जी ने रचा।

जोतिराव फुले को सौ वर्ष बाद का आधुनिक भारत दिख रहा था। बच्चों को सिर्फ शिक्षा देना ही याने उन्हें सुशिक्षित करना नहीं है तो उन्हें वैचारिक दृष्टि से भी सबल बनाना यह उद्देश्य था। यह उनकी सोच उनके और उनके मित्रों में अनबन का कारण बनी।

जोतिराव के इस प्रकार के समाज कार्य और सुधारित विचारों का प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता गया। यही बात उच्च वर्ग, समाज के ठेकेदारों को पसंद नहीं आयी। इन लोगों ने जोतिराव को मौत के घाट उतारने का षड्यंत्र रचा। उन्हें मारने के लिए गुंडे भेज दिए। मारने आए लोगों का इरादा जानकर जोतिराव ने उनसे कहा - ''मला ठार करून तुमचं भलं होणार असेल तर जरूर मला ठार करा. आजवर तुमच्यासाठी झटलो. मरणसुद्धा तुमच्या भल्यासाठी येणार असेल तर तेही मला आनंददायकच वाटेल. घ्या, आपली

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 106

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

कामगिरी पार पाडा. परंतु माझ्या बंधुंनो, मला फक्त एकच सांगा, तुमची मुलं शाळेत जातात?''[1] (मुझे जान से मारने के बाद अगर तुम्हारा भला ही होना है तो आओ, मुझे मारो। आज तक मैं सिर्फ तुम लोगों के लिए पिसता रहा और आज अगर मौत भी तुम लोगों के काम आ रही है तो वह भी मुझे मंजूर है। इसमें मुझे खुशी ही मिलेगी। आओ और अपना काम पूरा करो। लेकिन मेरे भाईयों, मुझे इतना बताओ कि क्या तुम्हारे बच्चे स्कूल जाते हैं?)

जोतिराव के इन शब्दों से उनके दिल काँप उठे। वे ग्लानि महसूस करने लगे। उन्होंने जोतिराव के पाँव पकड़कर माफी माँग ली। मनुष्यत्व की वह साक्षात् सजीव मूर्ति देखकर उनका मन बहल गया। सच्ची जानकारी बताकर जिन लोगों ने उन्हें यह दुष्कृत्य करने भेजा उन्हें नर्क भेजने की आज्ञा माँगी। इस पर जोतिराव ने कहा - ''नाही धोंडीबा, असा विचारही मनात आणू नका. त्यांनी एक चूक केली म्हणून तुम्ही दुसरी चूक करू नका. त्यांना क्षमा करणं हीच त्यांना मोठी शिक्षा ठरेल. आपलं अज्ञान हेच या अनर्थाला कारणीभूत आहे. ते दूर करण्यासाठी झटू या. कोणावर सूड घेऊन, रक्तपात करून का आपली उन्नती होणार आहे? आपण सारी एकाच ईश्वराची लेकरे. त्या नात्याने तेही आपले बांधवच आहेत. आज ना उद्या त्यांना आपल्या कृत्यांचा पश्चात्ताप होईल. तीच त्यांना खरी शिक्षा ठरेल.''[2] (नहीं धोंडिबा, ऐसा विचार भी मन में मत लाना। उन्होंने एक भूल की, इसलिए तुम दूसरी भूल मत करना। उन्हें क्षमा करना यही उनके लिए बड़ी सजा होगी। हमारा अज्ञान यही इस अनर्थ की वजह है। वह दूर करने के लिए प्रयास करने हैं। किसी पर बदला लेकर, रक्तपात करके हम अपनी उन्नति कैसे करेंगे? हम सब एकही ईश्वर के बच्चे हैं। इस रिश्ते से वे भी हमारे भाई हो गए। आज नहीं तो कल उन्हें अपने इस कृत्य का पश्चात्ताप होगा। वही उन्हें सच्ची सजा होगी।) माफ किए गए यह लोग आगे एक विद्वान पंड़ित तो दूसरा अंगरक्षक बन गया।

सावित्री मायके गई थी। मायके में भाई का उनके इस कार्य के लिए कड़ा विरोध था, लेकिन सावित्री ने जोतिराव का साथ नहीं छोड़ा। इस कार्य में परछाई की तरह सावित्री उनके साथ-साथ चली। हर यातना को खुशी से स्वीकार किया।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 114-115
2. वही, पृष्ठ - 116

पहले भाग के कथानक में जोतिराव के मन में चलनेवाली अनंत विचारों का संक्रमण, विचारों का प्रत्यक्ष कृति में किया हुआ परिवर्तन, आनेवाली हर बाधा का कड़ा संघर्ष, सावित्री का प्रोत्साहन, उनका सम्मान आदि बातें हैं। दूसरे हिस्से की शुरुआत अंग्रेजों के खिलाफ उठाए गए आंदोलन से हैं। इसमें 1857 के आंदोलन की बात है। नाईयों ने आंदोलन चलाया था। तभी विधवाओं के जीवन की अनेक समस्याओं का वर्णन आया है। विधवाओं की समाज में दुर्गति हुआ करती थी। उसे अशुभ मानकर समाज में उसका अपमान और हर प्रकार से शोषण होता था। 25 जुलाई 1856 में विधवा विवाह का कानून पारित हुआ लेकिन समाज का उच्च वर्ग इस विधवा विवाह के खिलाफ था। इसमें घर की प्रतिष्ठा, सम्मान महत्त्वपूर्ण माना जाता। पतिव्रत्य का महत्त्व बताने वाले और अपनी पत्नी के मौत के बाद उसकी चिता ठंडी होने से पहले दूसरी शादी रचानेवाले यह स्वार्थी लोग ही इसका विरोध करते थे। स्त्रियों पर हजारों पाबंदियाँ लगाने वाले यह भूल जाते कि उन्होंने भी स्त्री के पेट से ही जन्म लिया है। ऐसी स्थिति में इन विधवाओं को पुरूषों की हवस का शिकार होना पड़ता। इसी प्रसंग में काशीबाई नामक विधवा को अपने नवजात अर्भक को मारने की सजा उम्रकैद के रूप में मिली। यह समाज का अत्याचार था जो उस विधवा को सहन करना पड़ा। इस तरह से भ्रुण हत्याएँ बढ़ रही थीं। इसी से जोतिराव सन् 1863 में 'बालक हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना कर देते हैं। बालकाश्रम का खर्चा बढ़ने पर खडकवास में तालाब बनवाने के काम में पत्थर भेजने का काम उन्होंने लिया था।

जोतिराव और सावित्री को अपना बच्चा नहीं था। जोतिराव के पिताजी की इच्छा थी कि जोतिराव ने दूसरी शादी कर लेनी चाहिए, लेकिन सिर्फ बच्चा नहीं है इस बात को लेकर दूसरी शादी करना जोतिराव को पसंद नहीं था। उनका इस बात के लिए विरोध था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया।

जोतिराव के समाज कार्य का महत्त्व पिता गोविंदराव को देर सबेर से समझ में आया। उनके जीवन की यात्रा समाप्त हुई। पिताजी की मौत के बाद जोतिराव जी ने ब्राह्मणी रस्मो-रिवाजों को पूरी तरह त्यागकर उसकी जगह दीन-हीन अपाहिज

लोगों के लिए अन्नदान कर दिया। इससे उनके परिवर्तनोन्मुख विचार स्पष्ट हो जाते हैं, जो कार्य आज के समय में भी कठिन है, वह उन्होंने उस समय में कर दिया था।

एक दिन घर जाते समय रोज दिखाई देनेवाला दृश्य दिख रहा था कि कुएँ पर ब्राह्मण लोग अपने कुएँ का पानी खत्म कर रहे थे, दूसरे कुएँ पर शूद्र लोग पानी ले रहे थे, लेकिन वहीं पर अतिशूद्र लोग पानी के लिए प्रार्थना, याचना कर रहे थे, उनकी यह फर्याद किसी ने नहीं सुनी। यह देखकर जोतिराव का मन दहल उठा। उन्होंने सभी को बुलवाया और शूद्र नाईक की गगरी अपने कुएँ में डाल दी। यह पहली बार हुआ था। यहाँ पर जोतिराव के क्रांतिकारी विचार स्पष्ट होते हैं। अपना कुआँ उन्होंने सभी के लिए खोल दिया।

शिवाजी महाराज का चरित्र पढ़कर श्रद्धा से नतमस्तक होकर जोतिराव रायगड़ पर शिवाजी महाराज की समाधि पर अपने श्रद्धा के फूल चढ़ाने गए। समाधि का शोध लेकर उन्होंने पूजा की। ब्राह्मणों ने वहाँ आक्षेप किया, क्योंकि उन्हें दीक्षा से हाथ धोना पड़ा। वहाँ से लौटकर शिवाजी महाराज के गुणों का 'पोवाडा' जोतिराव ने रचाया। इसमें दीन-हीन लोगों की स्थिति, ब्राह्मणों का वर्चस्व आदि बातों को लेकर आठ भागों में यह रचना लिख दी। इंग्लैंड की रानी के सामने इसका वर्णन किया गया।

जोतिराव ने धोंडिराम शाहीर को दिए वचन के अनुसार 'ब्राह्मणांचे कसब' इस ग्रंथ का लेखन आरंभ कर दिया। इस समय भालेराव रानडे इनसे जोतिराव की मुलाकात हो गई। रानडे की बहन दुर्गाबाई विधवा हो गई। उसका पुनर्विवाह किया जाए ऐसा विचार जोतिराव का था, लेकिन रानडे (रावसाहेब) इसके लिए राजी न थें। उन्हें ड़र था कि उन्हें बिरादरी से बाहर कर दिया जाएगा। जोतिराव को इस तरह सिर्फ बोलने वाले सुधारक नहीं चाहिए थे। वे कहते हैं - "मग रावसाहेब, आपलं हे सुधारकाचं ढोंग पुरं करा."[1] (फिर रावसाहेब, अपना यह सुधारक होने का नाटक बस कीजिए।) सिर्फ बोलने वाले और प्रत्यक्ष कार्य करने वालों में यह फर्क था। सावित्री ने सदाशिव गोवंडे की पत्नी सरस्वतीबाई के साथ मिलकर 'स्त्री विचारवती' सभा की स्थापना की। इस तरह जोतिराव सावित्री का वैयक्तिक दांपत्य जीवन समाजकार्य के साथ सहज जुड़ा था।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 180

जोतिराव फुले का 'गुलामगिरी' सन् 1873 में प्रकाशित हुआ। इसे लिखते समय अपने नजर के सामने उन्होंने कुल मिलाकर भारतीय समाज रखा था। जिसमें सदियों से अज्ञान, अंधश्रद्धा, कुरीतियों, रूढ़ियों, आड़ंबरों के चक्रव्यूह में पिसते इस समाज को अंध:कार की खाई से निकलकर शिक्षा की उजली राह दिखाई थी।

ईश्वर और भक्त के बीच में पुरोहित एक बाधा है। संसार में कोई उच्च या नीच नहीं है। ऐसे विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। सन् 24 सितंबर 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना हुई। शूद्र-अतिशूद्रों को उनकी मानसिक गुलामी से बाहर करना, पुरोहितों से होनेवालें अन्याय-अत्याचारों से उस गुलामी से मुक्त करना यही इस समाज का उद्देश्य था। इसमें शादी में कम खर्चा करने की, शराबबंदी की, सभी को अनिवार्य रूप से शिक्षा देने की, अंधरूढ़ि-अंधश्रद्धाएँ, जातिभेद, आडंबरों के खिलाफ आवाज उठाने की बात थी। 'यशवंत' को जोतिराव और सावित्री ने काशीबाई नामक विधवा से गोद ले लिया था।

विधवा विवाह को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ विधुर जीवन जीनेवाले सीताराम का पुनर्विवाह किया। तभी रानडे ने पहली पत्नी की मौत के बाद ग्यारह वर्ष की बालिका से उम्र के 32वें वर्ष में पुनर्विवाह किया था। जोतिराव का मानना था कि उन्हें किसी विधवा से पुनर्विवाह करना चाहिए था। इस विवाह से स्पष्ट हुआ कि रानडे सिर्फ बोलने वाले सुधारक थे, प्रत्यक्ष कृति से वे मुँह फेर लेते हैं।

स्वामी दयानंद जिन्होंने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, परंपरागत वर्णव्यवस्था के प्रति आवाज उठायी ऐसे व्यक्ति का सत्यशोधक समाज की ओर से गौरव का आयोजन किया लेकिन उच्च वर्ग के लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया।

सन् 1877 में आए भयंकर अकाल की स्थिति में किसानों की दुर्गति हो गई। साहुकारों ने उनका सब कुछ छोन लिया। ऐसे में जोतिराव ने इनके लिए अन्नछत्र खोल दिए। अकाल की स्थिति में जोतिराव के बड़े भाई राजारामभाऊ मुंबई गए लेकिन वहाँ की परिस्थिति से वही उनकी मौत हो गई।

करडे गाँव के किसान बाबासाहेब देशमुख पर हुए साहुकारों के अत्याचार से किसानों ने किसान आंदोलन चलाया। सदियों से पददलित किसान अपने हक़ के लिए लड़ रहा था। आखिर में सरकार ने किसानों की बात सुननी तथा उन्हें हुआ नुकसान भर देने का वादा किया तब जाकर किसानों का गुस्सा कम हुआ।

सन् 1857 में 'दीनबंधू' नामक वर्तमानपत्र कृष्णराव भालेराव ने निकाला। इसमें किसानों की दीनावस्था का यथार्थ चित्रण था, लेकिन समाज के ठेकेदारों ने इसका कड़ा विरोध किया। उन्हें डर था कि सदियों से चल रहा अपना अधिकार समाप्त तो नहीं हो जाएगा न? बापूजी हरी की बेटी ताराबाई शिंदे के निबंध 'स्त्री-पुरूष तुलना' में स्त्री के सत्य स्थिति का अंकन था। जोतिराव फुले के विचारों और अन्वेषण पद्धति का परिणाम उनके ऊपर हुआ था। जोतिराव जब नगरपिता चुन लिए गए तो उन्होंने सकुशलता के साथ यह जिम्मेदारी निभाई। जिसमें नए नौकरों की भरती, शहर की स्वच्छता, शराब बंदी, आरोग्य, शिक्षा आदि अनेक कामों को सफल बनाया।

विधवाओं का उस समय केशवपन किया जाता। इसके लिए नाइयों को संघटित कर इसका विरोध करने की जोतिराव ने ठान ली, लेकिन ऐसी स्थिति में विधवा स्त्री के केश घर की दूसरी स्त्री या नाईन आकर काट देती। जोतिराव के इस आवाहन को उस समय कोई प्रतिफल नहीं मिला। समाज की अनेक कुरीतियों में और एक अत्यंत दुष्ट रीति थी, वह 'देवदासी प्रथा' की। इससे जिन लड़कियों को इस तरह देवदासी बनाया गया था उसका समाज में हर तरह का शोषण होता रहता और भगवान के नाम पर उसका वेश्या की तरह उपभोग लिया जाता। जोतिराव ने इस प्रथा का विरोध किया। साथ में एक विवाह भी रूकवा दिया, लेकिन कोई ठोस प्रतिबंधक कारवाई न होने के कारण आगे वह संपन्न हुआ। इसका बहुत बड़ा अफसोस फुले को था।

दूसरे भाग के कथानक में जोतिराव ने सोचे हुए अपने कार्यों को पूरा कर दिया, स्त्रियों के लिए किया कार्य, अतिशूद्रों के लिए किया कार्य, ब्राह्मण लोगों के कुटिल कार्यों के खिलाफ उठाई आवाज, जिम्मेदारियों, संघर्ष आदि सब कुछ करते हुए किया समाजकार्य और उसमें मिली उन्हें सफलता का चित्रण है।

तीसरे भाग के कथानक की शुरुआत राष्ट्रीय सभा के आयोजन की खबरों के साथ ही शुरू होती है। जहाँ दीन-दु:खियों का मर्म प्रस्तुत करना था, सदियों से पददलित समाज को जगाने का कार्य राष्ट्रीय सभा करनेवाली थी। 'सत्यशोधक समाज' में आयोजित विवाह के मंत्रों की रचना जोतिराव ने की थी, जहाँ पुरोहितों को कोई स्थान नहीं था। आगे ग्रंथकार सभा का आयोजन रानडे और लोकहितवादी गोपाल हरी देशमुख ने किया, लेकिन उसमें समाज के सभी वर्गों का चित्रण करनेवाले जोतिराव के 'गुलामगिरी' को शामिल नहीं किया था।

समाज का हित, उसकी उन्नति, शूद्रों का जीवन सुधारने के लिए प्रयास, स्कूलों की स्थापना, लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना, आदि बातों में फुले उम्र के 60 वर्ष पूर्ण कर चुके लेकिन यह करते समय अपने स्वास्थ्य की तरफ ध्यान नहीं दिया, जिससे उन्हें पॅरालिसीस का पहला झटका आ गया। ऐसी स्थिति में जीवन भर अर्धांगिनी रहनेवाली सावित्री की चिंता उन्हें थी। उन्होंने अपना मृत्युपत्र बनवाया। यशवंत उनका वारिस था। उसकी शादी ससाणे जी की लड़की राधाबाई से संपन्न की।

इंग्लैंड के राजकुमार ड्युक ऑफ कॅनॉट के सम्मान समारोह में जोतिराव को भी आमंत्रण था। भारतीय किसान की वास्तविक स्थिति राजपुत्र के सामने प्रस्तुत हो ऐसी कामना उनकी थी और इसी वजह से इस दावत में वे किसान के वेश में उपस्थित हुए और उपस्थित होकर अपने मंतव्य में पूरी स्थिति का बयान कर दिया।

किसानों की सत्यस्थिति, उनके ऊपर होनेवाला अन्याय, ब्राह्मणों की स्वार्थवृत्ति आदि का यथार्थ अंकन करने वाले 'शेतकऱ्यांचा आसूड' नामक ग्रंथ की रचना की। दूसरे देशों की तुलना में हमारे देश के किसान की तुलना की जाए तो परंपराओं से उच्च वर्ग उस पर हुक्म चला रहा है, दुनिया का पेट पालनेवाले किसान को अपने परिवार के लिए दो जून की रोटी तक नसीब नहीं होती, आदि बातें उसमें थीं। किसान जब तक अज्ञान का अंधेरा मिटाकर ज्ञान की रोशनी नहीं कर लेगा तब तक इस चक्रव्यूह में उलझता जाएगा, इस तरह का संदेश उसमें था।

समाज कार्य करते समय अत्यंत कठिन राह तय करनी थी और जहाँ घर-परिवार के साथ समाज का कड़ा संघर्ष भी सहन करना था तो अपमान, अन्याय भी और यह सब जोतिराव फुले ने सहन कर लिया। आजीवन अपना कार्य ईमानदारी से पूरा करनेवाले इस व्यक्ति को 11 मई 1888 को मांडवी के कोलीवाड़ा सभागृह में 'सत्यशोधक समाज' की ओर से 'महात्मा' इस उपाधि से सम्मानित किया। एक आम व्यक्ति जो जीवनभर अन्याय के विरोध में अपनी लड़ाई लड़नेवाला, आजीवन परिश्रम करनेवाला, अज्ञान का अंधेरा दूर करनेवाला, समाज के ठेकेदारों के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करनेवाला, ऐसे कार्य करते-करते 'महात्मा' की उपाधि तक पहुँच जाता है। लोगों का यह प्रेम देखकर फुले को धन्यता मिली।

जोतिराव फुले को गरीब बच्चों की शिक्षा की फिक्र तो हमेशा से थी। इसी कारण अपनी खेती बेचकर उन्होंने वसतिगृह की स्थापना की। जहाँ उनके खाने-पीने से लेकर पढ़ने-लिखने की पूरी जिम्मेदारी थी। फुले को पॅरालिसीस का दूसरा झटका आने पर भी उन्होंने 'सार्वजनिक सत्यधर्म' नामक ग्रंथ का लेखन जारी रखा। यह ग्रंथ उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था।

इस तीसरे भाग में फुले के कार्य, सत्सार का अंक, अखंडो की रचना, इंग्लैंड के राजपुत्र के सामने किसानों की स्थिति का अंकन, 'शेतकऱ्यांचा आसूड' (किसान का कोड़ा) की रचना, 'सार्वजनिक सत्यधर्म' की रचना आदि बातें आती हैं और 'महात्मा' की उपाधि से किया सम्मान महत्त्वपूर्ण है।

चौथे और अंतिम भाग में फुले का स्वास्थ्य गिरता दिखाई देता है। दूर से देखने आए लोगों को फुले कह देते - ''बंधूंनो, ही आपली अखेरची भेट समजा. गेल्या दोन हजार वर्षात मिळालं नाही, ते आपणांस येत्या पन्नास वर्षात खात्रीनं मिळेल. तुम्ही पेशवाईत गुरासारखे वागत होता, तसे न वागता वाघाप्रमाणे वागा. आंग्लाई आज आहे, उद्या नाही. ती आहे तोपर्यंत आपली उन्नती करून घ्या, शहाणे व्हा. विद्या हीच माणसाला

मनुष्यत्व प्राप्त करून देते. बंधूंनो, आपल्या सत्यधर्माची कास सोडू नका. मानवजातीची एकी करण्यास हाच धर्म उपयुक्त आहे.''[1] (भाइयों, यह अपनी आखिरी मुलाकात समझ लो। पिछले दो हजार सालों में जो नहीं मिला, वह हमें आनेवाली पचास सालों में मिलेगा। तुम पेशवाई में जानवरों की तरह रहते थे, अब वैसे न रहकर शेर की तरह जीओ। अंग्रेजी सत्ता आज है, कल नहीं। वह है तब तक अपनी उन्नति कर लो, होशियार रहो। विद्या ही इन्सान को इन्सानियत दिलाएगी। बंधुजन, अपने सत्यधर्म को कभी मत छोडना। पूरे मानव जाति को एक करने में यही धर्म उपयुक्त साबित होगा।)

जोतिराव फुले ने सावित्री की जिम्मेदारी यशवंत पर सौंप दी। उम्र भर समाज की उन्नति के लिए, उसके विकास के लिए निरंतर किसी दिए की तरह जलनेवाले जोतिराव की यह ज्योति 1880 में बूझ गई, जिसने अज्ञान की ज्योति से संसार को प्रकाशमान कर दिया। आजीवन संघर्ष सहते रहे और मृत्यु के बाद भी उनके शव को संघर्ष सहना पड़ा। बिरादरी के लोगों ने तब भी बखेड़ा खड़ा कर दिया। ऐसी स्थिति में सावित्री जी को बाहर आना पड़ा। ''भाऊजी, टिटवं धरायची काळजी तुम्हाला नको. टिटवं मी धरणार आहे. खांदा फक्त सत्यशोधक बांधव देतील. तुमची कोणाचीही सावली शेटजींवर पडायला नको आहे. इतक्या दिवसानंतर आजच तुम्हाला शेटजींची आठवण का झाली, हे मला माहित आहे. निदान त्यांनी केलेल्या उपकारांची तरी आठवण ठेवा.''[2] (जेठजी, शव के अग्नि-संस्कार की चिंता तुम मत करो। वह मैं ले लूँगी। कंधा सिर्फ सत्यशोधक बंधू ही देंगे। तुममें से किसी की परछाई भी शेटजी पर नहीं पड़नी चाहिए। इतने दिनों के बाद आज ही आपको शेटजी की याद क्यों आयी, यह मालुम है मुझे। आखिर उन्होंने आप पर किए अहसानों को तो याद कीजिए।) इस तरह आजीवन संघर्ष ही झेलनेवाले, एक आम व्यक्ति जो परंपरागत समाज के सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रति जिहाद पुकारता है और उन्हें समूल उखाड़ने की कोशिश करता है। यह सब करते हुए दीन-हीनों के अधिकारों के प्रति सचेत रहता है, ऐसा व्यक्ति अपने कार्य के कारण 'महात्मा' की उपाधि तक पहुँच जाता इसका यथार्थ अंकन यहाँ होता है।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 440
2. वही, पृष्ठ - 451

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि डॉ. रवींद्र ठाकुर ने बचपन से प्रस्थापित समाज के विरोध में अपना कार्य करनेवाले क्रांतिकारी स्वभाव के जोतिराव फुले का जीवन 'महात्मा' में उकेरा है। परंपरागत संस्कारों के कारण उनके मन में उठे हुए अनेक तूफान, खुद के अपमान से तिलमिला कर पददलितों के लिए लड़ाई की प्रतिज्ञा करनेवाले, समाज के अतिशूद्र, स्त्री आदि उपेक्षित लोगों के लिए दिन-रात किया कार्य, यह करते हुए अखंड संघर्ष और अपमान इसके घूँट को पीकर अपना कार्य जारी रखनेवाले, महात्मा जोतिराव फुले का चरित्र यहाँ प्रस्तुत होता है। प्रवाह के विरोध में कार्य करनेवाले इस महान व्यक्ति की यह गाथा अत्यंत सफलतापूर्वक ठाकुर ने प्रस्तुत की है। अत: कहना सही होगा कि डॉ. रवींद्र ठाकुर का 'महात्मा' एक सफल तथा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

2.3 'सूत्रधार' एवं 'महात्मा' : तुलनात्मक मूल्यांकन :

संजीव लिखित 'सूत्रधार' और डॉ. रवींद्र ठाकुर लिखित 'महात्मा' दोनों चरित्रप्रधान उपन्यासों का विषयगत विवेचन यहाँ प्रस्तुत हुआ है। संजीव ने 'सूत्रधार' में निम्नजाति में जन्मे भिखारी ठाकुर के जीवन को प्रस्तुत किया है, जो सामाजिक और पारिवारिक बंधनों के बावजूद वहाँ से निकलने की कोशिश करता है और इसी सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को अपने अभिनय के द्वारा लोगों तक पहुँचाता है। वही डॉ. रवींद्र ठाकुर ने 'महात्मा' में महात्मा जोतिराव फुले के संघर्षमय जीवन को चरितकहानी के द्वारा प्रस्तुत किया है। फुले के कार्य, समाज उन्नति के प्रयास, समाज का कड़ा विरोध, अखंड संघर्ष आदि की दास्ताँ याने 'महात्मा' है। दोनों उपन्यास के नायकों का जीवन अखंड संघर्ष ही रहा। निम्न जाति में पैदा होने की कचोट और सामाजिक बंधनों को तोड़ने की जिजीविषा। यह सब करते समय उन्हें मिली सफलता का यथार्थ अंकन विवेच्य उपन्यास के लेखकों ने अत्यंत सफलता से पूर्ण किया है।

2.3.1 साम्य -

तुलनात्मक मूल्यांकन के आधार पर यहाँ साम्य और वैषम्य प्रस्तुत है -

15508

साम्य :-

1. 'सूत्रधार' एवं 'महात्मा' दोनों ऐतिहासिक चरित्रप्रधान उपन्यास हैं।
2. पृष्ठों की संख्या से 'सूत्रधार' 344 पृष्ठों का तो 'महात्मा' 456 पृष्ठों के बृहत उपन्यास हैं।
3. 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर तथा 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले दोनों का जीवन संघर्ष की यात्रा रहा।
4. विवेच्य उपन्यास के नायक सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा करनेवाले थे।
5. उपन्यास में प्रस्तुत संवाद योजना अत्यंत सफल साबित हुई है, जिससे यथार्थता सजीवता के साथ प्रस्तुत होती है।

2.3.2 **वैषम्य -**

1. 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर अ-शिक्षित थे, तो 'महात्मा' के फुले शिक्षित होने के साथ उन पर पेन, अब्राहम लिंकन आदि के विचारों का प्रभाव था।
2. 'सूत्रधार' के भिखारी से अधिक फुले क्रांतिकारी थे।
3. 'महात्मा' से अधिक 'सूत्रधार' की भाषा में वर्णनात्मकता, काव्यात्मकता दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि दोनों उपन्यासों की भाषा अत्यंत यथार्थ है। पूरी कथा चरित्रोत्घाटन करने में सफल सिद्ध हुई है। कथा में कही निरसता नहीं है। दोनों लेखकों ने नायकों के जीवन को प्रस्तुत करने में कहीं भी भूल नहीं की है। सभी बातें कालानुरूप हैं। 'सूत्रधार' एवं 'महात्मा' दोनों ऐतिहासिक चरित्रप्रधान उपन्यास हैं। पृष्ठों की संख्या की दृष्टि से 'सूत्रधार' 344 पृष्ठों का तो 'महात्मा' 456 पृष्ठों का बृहत उपन्यास है। 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर तथा 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले दोनों का जीवन

संघर्ष की यात्रा रहा है। विवेच्य उपन्यास के नायक सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा करनेवाले थे। उपन्यास में संवाद योजना अत्यंत सफल साबित हुई है, जो यथार्थता सजीवता के साथ प्रस्तुत हुई है।

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर अशिक्षित थे तो 'महात्मा' के फुले शिक्षित होने के साथ उन पर टॉमस पेन, लिंकन, शिवाजी महाराज आदि के विचारों का प्रभाव था। भिखारी ठाकुर से अधिक फुले के विचार क्रांतिकारी थे। 'सूत्रधार' की भाषा अधिक वर्णनात्मक एवं काव्यात्मक है बल्कि 'महात्मा' की भाषा अधिक काव्यात्मक नहीं है।

* * * *